मालदा में रेशम उद्योग और व्यापारकी स्तिति का अध्यन

Jeewachh Kumar[1]*, Dr Arvind Kumar Verma [2]**
1. Research Scholar,
2. Professor and Head
* Department of History, Purnea University, Purnia, Bihar, India
** Department of History, Purnea University, Purnia, Bihar, India
Corresponding Author: Jeewachh Kumar
Email:-jeewachhkr@gmail.com

सार: रेशम उद्योग वह है जो रेशम के कीड़ों के प्रजनन के साथ-साथ उनके द्वारा उत्पादित रेशम से रेशम के धागे और कपड़े के उत्पादन के लिए जिम्मेदार है। भारतीय रेशम उद्योग देश के लिए रोजगार और विदेशी मुद्रा के सबसे बड़े जनरेटर में से एक है क्योंकि भारत में 52,360 गांवों में रेशम उत्पादन की गतिविधियाँ फैली हुई हैं। रेशम की सभी व्यावसायिक रूप से उपयोगी किस्मों के उत्पादन के मामले में , भारत एक अद्वितीय वैश्विक स्थान रखता है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा रेशम उत्पादक है। वित्त वर्ष 19 के दौरान, भारत में रेशम उत्पादन ने 9.1 मिलियन से अधिक लोगों को रोजगार दिया। यह लेख आपको **रेशम उद्योग** के बारे में बताएगा जो UPSC सिविल सेवा परीक्षा के लिए भूगोल की तैयारी में सहायक होगा।

[Kumar, J. and Verma, A.K. **मालदा में रेशम उद्योग और व्यापार की स्तिति का अध्यन** . *The International Journal of Interpretation, Observation and Analysis*, 2025; Volume 2, Issue 1:76-80 (April-June). ISSN 2349-0713, Peer-reviewed (online/offline), Refereed, Indexed and International Journal (Since 2013), Global Impact Factor: 5.776

Keywords: मालदा, रेशम उद्योग, व्यापार की स्तिति

परिचय: रेशम उत्पादन का इतिहास अत्यंत प्राचीन है और यह पूर्णतः कृषि आधारित एक आर्थिक गतिविधि रही है। रेशम उत्पादन की उत्पत्ति लगभग 4,000 वर्ष पूर्व चीन में हुई थी। चीन और जापान के पश्चात रेशम विभिन्न देशों के माध्यम से अनेक मार्गों से भारत पहुँचा। वास्तव में , भारत भी चीनी रेशम उद्योग के प्रसार से अछूता नहीं रहा ; फिर भी, हम अध्ययन क्षेत्र में रेशम उत्पादन की सटीक शुरुआत के समय को निश्चित रूप से नहीं बता सकते।औपनिवेशिक काल से पूर्व बंगाल में रेशम उद्योग एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था , जिसमें मालदा को रेशम उत्पादन का प्रमुख केंद्र माना जाता था। यह व्यवसाय रेशम उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में संलग्न श्रमिकों को आजीविका के अवसर प्रदान करता था।

मालदा को "धन का स्थान" कहा जाता था और इसकी समृद्धि का मूल आधार रेशम उत्पादन था। यहाँ के अधिकांश लोग स्थानीय रेशम उद्योग से जुड़े हुए थे। मार्च 1813 में पूर्णिया और दिनाजपुर जिलों के कुछ भागों को मिलाकर मालदा जिले का गठन हुआ। प्रारंभ में श्री ब्रैडडन को डिप्टी कलेक्टर और संयुक्त मजिस्ट्रेट के रूप में मालदा का प्रशासन सौंपा गया। 1832 में मालदा में प्रथम कोषागार (ट्रेजरी) की स्थापना हुई , किंतु स्वायत्त प्रशासनिक संरचना 1859 तक सुदृढ़ नहीं हुई थी। 1860 से मालदा को अन्य जिलों के समान अधिकार प्राप्त हुए।इंग्लिश बाजार , जो क्षेत्र की प्रमुख बस्ती थी , महानंदा नदी के पश्चिमी तट पर स्थित था और यहीं पर सिविल स्टेशन तथा प्रशासनिक मुख्यालय स्थापित था। मालदा का भौगोलिक तथा प्राकृतिक वातावरण भारत के रेशम उद्योग के विकास में सहायक रहा।प्राचीन भारतीय महाकाव्य , जैसे ऋग्वेद, रामायण और महाभारत, रेशम उद्योग का उल्लेख करते हैं। भारत का बंगाल प्रांत , विशेष रूप से अपने रेशम उद्योग के लिए प्रसिद्ध था। "पत्ताबस्त्र" (पत्ते जैसे मुलायम वस्त्र) , जो रेशम धागों से निर्मित होते थे , इसका उत्कृष्ट उदाहरण थे। डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर ने भी उल्लेख किया है कि गौड़ के हिंदू राजवंशों के समय में कई क्षेत्रों में रेशम की खेती विशेष रूप से लोकप्रिय थी।

मालदा बंगाल प्रांत में रेशम उत्पादन का प्रमुख केंद्र था। मालदा के एक रेशम व्यापारी, शेख भीक ने 1578 में "मालदाही वस्त्र" रूस भेजे थे। इस प्रकार, औपनिवेशिक युग से पूर्व तथा बाद के काल में भी रेशम तथा कच्चे रेशम के वस्त्र मालदा का प्रमुख निर्यात उत्पाद रहे।मालदा में रेशम उत्पादन तथा व्यापार में विभिन्न स्तर के श्रमिक जैसे शहतूत उत्पादक , पालक, रीलर, कातनी, वाइंडर, बुनकर, कपड़ा निर्माता और व्यापारी शामिल थे। इन श्रमिकों ने अपने-अपने कार्यक्षेत्र में अच्छी आय अर्जित की, और यह व्यवसाय कई पीढ़ियों तक प्रचलित रहा।यह शोध परियोजना विशेष रूप से 1770 से 1833 तक की अवधि में बंगाल में रेशम उद्योग की स्थिति तथा मालदा के रेशम व्यापार और वाणिज्य पर केंद्रित है।

विभिन्न शहतूत खेती तकनीकें: झाड़ी प्रणाली और वृक्ष प्रणाली शहतूत की खेती एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसमें संपूर्ण कृषि व्यवस्था सम्मिलित थी। रेशम के कीड़ों का पालन और रेशम उत्पादन शहतूत कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण भाग था। चूँकि कोकून उत्पादन की कुल लागत का 60% रेशम बनाने में खर्च होता था , इसलिए शहतूत का उत्पादन कोकून और रेशम की लागत निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण कारक था। शहतूत की पत्ती का उत्पादन भौगोलिक स्थिति के अनुसार भिन्न होता था।

बुकानन के अनुसार, पूर्णिया में प्रति औसत 171 सेर पत्तियाँ उत्पन्न होती थीं, जबकि मालदा में 82 सेर। विभिन्न समयों में पत्तियों की एक टोकरी की कीमत एक से तीस रुपये तक हो सकती थी।

मालदा क्षेत्र में रेशम उद्योग से जुड़े अधिकांश मजदूर अपनी आय के लिए शहतूत की खेती और कीड़ों के पालन पर निर्भर थे। विभिन्न क्षेत्रों में शहतूत की खेती भिन्न-भिन्न तरीकों से की जाती थी। मालदा में शहतूत की झाड़ी विधि का प्रचलन था , जिसमें पौधों को दो से तीन फीट ऊँचाई से अधिक बढ़ने नहीं दिया जाता था। इन पौधों की पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खिलाने के लिए प्रतिदिन दो बार काटी जाती थीं। शहतूत के पौधों की स्थापना सरल थी और इनका रखरखाव भी आसान था। सफेद शहतूत की कोमल पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को अत्यंत प्रिय थीं। इसके बाद लाल शहतूत आता था , जबकि काले शहतूत की खुरदरी पत्तियाँ कम प्रिय थीं। "अल्बा" नामक सफेद फलवाले शहतूत के पौधे की पत्तियाँ कीड़े तेजी से खाते थे , और यह पौधा शीघ्र वृद्धि भी करता था। बार-बार पत्तियाँ तोड़ने पर भी पौधों को कोई क्षति नहीं पहुँचती थी।

सफेद शहतूत से प्राप्त कोकून के धागे की गुणवत्ता लाल या काले शहतूत की तुलना में श्रेष्ठ होती थी। तापमान भी कोकून की गुणवत्ता को प्रभावित करता था। यदि रेशम के कीड़ों को एक साथ सफेद , लाल और काले शहतूत की पत्तियाँ दी जातीं , तो वे सबसे पहले सफेद पत्तियाँ खाते थे , फिर लाल और अंत में काली। शहतूत के पौधों को उगाने के लिए सबसे प्रभावी तरीका कटिंग था। यद्यपि इस विधि से पौधों की संख्या बीज से कम होती थी , फिर भी इनकी ताकत और वृद्धि दर अधिक थी।चूँकि शहतूत की पत्तियाँ रेशम के कीड़ों के लिए एकमात्र भोजन थीं , इसलिए उत्पादकों को पौधों की देखभाल में विशेष ध्यान देना पड़ता था। शहतूत की पत्तियों के उचित विकास के लिए पाँच प्रमुख घटकों की आवश्यकता होती थी: जल , रंजक पदार्थ, रालयुक्त यौगिक, ठोस रेशे, सैक्रिन और जल। उच्च पोषण वाली पत्तियाँ रेशम के कीड़ों के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक थीं। कीड़ों के आकार , गुणवत्ता और स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए अत्यधिक सावधानी बरती जाती थी। वर्ष का प्रत्येक महीना शहतूत की खेती के लिए उपयुक्त नहीं होता था।

अक्टूबर में रोपण के लिए कलमें तैयार की जाती थीं और जून में पत्तियों की कटाई की जाती थी। हर तीन या चार वर्षों में पौधों को जमीन के निकट से काट दिया जाता था , जो फरवरी में किया जाता था। फिर जून में नए अंकुरों से पत्तियाँ पुनः तोड़ी जाती थीं। अच्छी मिट्टी में शहतूत के पौधे 15 वर्ष तक जीवित रह सकते थे , जबकि साधारण मिट्टी में 6 से 7 वर्ष तक।आमतौर पर पौधों को तीन साल में एक बार जमीन के पास से काटा जाता था ताकि ऊँचाई ऐसी रहे कि किसान बिना चढ़े पत्तियाँ तोड़ सके। पौधों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाई जाती थी , खाद दी जाती थी , जल दिया जाता था और खरपतवार हटाए जाते थे।

शहतूत की पत्तियों की कटाई प्रतिदिन सुबह या शाम में की जाती थी। अगले दिन के लिए पत्तियाँ समय से पहले इकट्ठी कर ली जाती थीं। पत्तियाँ उस समय नहीं तोड़ी जाती थीं जब उन पर ओस हो या वे गीली हों। लगातार दो दिन से अधिक वर्षा होने पर पत्तियाँ सुखाकर उपयोग की जाती थीं। गर्मी के दिनों में पत्तियाँ आसानी से सूख जाती थीं।

चूँकि रेशम के कीड़े अत्यंत संवेदनशील होते थे , इसलिए पत्तियाँ इकट्ठा करते समय विशेष सावधानी बरती जाती थी। गीली , सड़ी, मैली या धूलयुक्त पत्तियाँ कभी भी कीड़ों को नहीं खिलाई जाती थीं। कीड़े के प्रथम अवस्था की तुलना में बाद के चरणों में तीन गुना अधिक भोजन की आवश्यकता होती थी। बीस कोमल शहतूत की पत्तियों को बारीक काटकर नवजात कीड़ों पर फैलाया जाता था।

2.2 शहतूत की खेती के लिए विभिन्न मौसम

पश्चिम बंगाल और मालदा में वर्ष में तीन बार रेशम की खेती की जाती थी। फसल को स्थानीय भाषा में कहा जाता था। जिन महीनों में "बांध" फसलें परिपक्व होती थीं , उनके नाम भी इन्हीं बांधों के आधार पर रखे गए थे। तीन प्रमुख बांध थे नवंबर बांध :, मार्च बांध और जुलाई बांध।मुख्य बांध नवंबर में तैयार किए जाते थे और अक्टूबर से फरवरी के बीच एकत्र किए जाते थे। मार्च का बांध मार्च से जून के बीच और जुलाई का बांध — जिसे भी कहा जाता था "बरसात बांध"— जुलाई से सितंबर के बीच तैयार किया जाता था। शीतकालीन कोकून , जो प्राकृतिक रूप से सर्वश्रेष्ठ होता था, सबसे महंगा बिकता था।

मार्च बांध, नवंबर बांध के बाद आता था और जुलाई बांध अंतिम था , जब कोकून की गुणवत्ता कम होने लगती थी। शहतूत की खेती में फसल कटाई की प्रक्रिया अत्यंत महत्वपूर्ण थी , जिसे वैज्ञानिक विधियों द्वारा अद्यतन बनाए रखा गया था।फसल के प्रसार के लिए खेतों के ऊँचे किनारों पर लगे पेड़ों की सबसे बड़ी शाखाओं को काटा जाता था। इन कटिंग्स की लंबाई पाँच से छह इंच तक होती थी। इन्हें छेदों में लगाकर नमी बनाए रखते हुए पत्तियों के निकलने तक संभाला जाता था। अक्टूबर में इन्हें रोपित किया जाता था। इसके बाद, पर्चियों की कतारें लगाई जाती थीं। प्रत्येक गड्ढे में तीन या चार पर्चियाँ तिरछे डालकर हल्की मिट्टी से ढंक दी जाती थीं ताकि पौधे का कोई भी भाग बाहर न रहे। एक समूह को लगभग छह से सात इंच की दूरी पर रोपा जाता था। दिसंबर के अंत तक पौधे अंकुरित होने लगते थे। इसके बाद खेतों से खरपतवार हटाए जाते थे, मिट्टी पलटी जाती थी और जड़ों के निकट जुताई की जाती थी।

शहतूत उत्पादक जानते थे कि शुष्क मौसम में छोटे पौधों को धूप से बचाने के लिए चटाइयों का प्रयोग करना आवश्यक है। यही चटाइयाँ लंबे समय तक वर्षा से भी पौधों की रक्षा करती थीं। अप्रैल में , जब पौधे लगभग 18 इंच ऊँचे हो जाते थे , तो उन्हें पलट दिया जाता था जिससे लगभग एक फुट चौड़ी नहर जैसी जगह बनती थी। दो महीने बाद , पहली फसल काटी जाती थी। फिर क्रमशः सितंबर , अक्टूबर, नवंबर, दिसंबर और मार्च में फसलें ली जाती थीं।

आमतौर पर पौधों को वर्ष में चार बार काटा जाता और दो बार पत्तियाँ हटाई जाती थीं।

नमूने में मल्टीवोल्टाइन किस्म के निम्नलिखित रेशम के कीड़े पाए गए:

(i) निस्टरी या मंदराजी (बॉम्बिक्स क्रॉसी),

(ii) छोटा पालु या देसी (बॉम्बिक्स फोर्टुनाटस),
(iii) बारा पालु (बॉम्बिक्स टेंटा),
(iv) चाइना पालु (बॉम्बिक्स सुरेन्सिस),
(v) बुला पालु।
इनमें से मंदराजी और देसी सर्वाधिक प्रचलित थे। मंदराजी गर्म मौसम के लिए और देसी ठंडे मौसम के लिए उपयुक्त थे।
रेशम के कीड़ों को दिन में दो बार भोजन दिया जाता था और उन्हें बांस की रैक पर पाला जाता था। 40 दिनों के भीतर कीड़े घुमना शुरू कर देते थे और तीन दिनों के भीतर कोकून तैयार हो जाता था।

रेशम शिशुओं के पालनपोषण का इतिहास-

रेशम उद्योग पूरी तरह से रेशम के कीड़ों की खेती पर आधारित था। इस उद्योग की मुख्य गतिविधि कोकून उत्पादन थी। मालदा के ग्रामीण , जो इस उद्योग में शामिल थे , रेशम के कीड़ों के पालन को एक कला के रूप में देखते थे।
ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने सबसे पहले बंगाली नौकरों को रेशम उद्योग में नियुक्त किया था। ब्रह्मपुत्र घाटी को देशी रेशम के कीड़ों का मूल क्षेत्र माना जाता था। भारत में रेशम उत्पादन की परंपरा का उद्गम चीन से नहीं , बल्कि हिमालयी क्षेत्र से माना जाता है। रेशम के कीड़े पालने वाले लोगों को कहा जाता था "पुंडा", जो मुख्यतः मालदा , बोगरा, राजशाही और मुर्शिदाबाद जिलों में निवास करते थे।कोकून पालकों में सबसे अधिक दक्षता, ज्ञान और समृद्धि पुंडा समुदाय के पास थी।
अधिकांश कोकून पालक मुसलमान थे। यद्यपि कुछ निम्न वर्गीय हिंदू भी कोकून पालन में लगे थे , ब्राह्मण, वैद्य और कायस्थ जैसी उच्च जातियाँ इस पेशे से प्रायः दूर रहती थीं।पालन पोषण कार्य में लगे प्रत्येक व्यक्ति- कहा "टंट" कहा जाता था। शहतूत को स्थानीय भाषा में "बोस्नी" को टुंटिया" जाता था और कोकून पालकों को," "टुंटिया चासा ," और कहा जाता था।कोकून पालकों क "टुंटिया कैबर्टस"ो सामान्य कृषकों की तुलना में समाज में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी।
कोकून पालन की प्रक्रिया को नवीनतम तकनीकों के साथ अद्यतन बनाए रखना आवश्यक था। पायकर , जो कंपनी के लिए कोकून एकत्र करते थे , बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वे दूर दराज के गरीब ग्रामीण इलाकों- से कोकून एकत्र करते थे और शहरी व्यापार नेटवर्क के लिए महत्वपूर्ण कड़ी थे।पायकर रेशम उद्योग के वास्तविक संचालक थे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी उनके महत्व को अनदेखा नहीं कर सकती थी और पूरी तरह से कोकून आपूर्ति के लिए उन पर निर्भर थी।
इस प्रकार , उत्पादन संगठन की संरचना और शहतूत की खेती की तकनीक, दोनों ही औपनिवेशिक मालदा के रेशम व्यापार और उद्योग के विकास में निर्णायक भूमिका निभाते थे। यदि शहतूत की खेती समयानुकूल और उचित तकनीक से नहीं की जाती थी , तो संपूर्ण उत्पादन प्रणाली असफल हो जाती थी।रेशम उत्पादन एक पारंपरिक भारतीय प्रक्रिया थी , जिसमें स्वदेशी किसानों का कठिन परिश्रम निहित था। औद्योगिक संगठन में मध्यस्थ वर्गों — जैसे केलान , गोमस्ता, दल्लाल और पायकर — ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अंततः , पूरे रेशम उत्पादन संगठन की नींव उन असंख्य स्वदेशी श्रमिकों द्वारा रखी गई थी जिन्होंने उपनिवेशकालीन मालदा में रेशम उद्योग को सुदृढ़ किया।

रेशम की खेती की प्रकृति उत्पादन और संगठन :

मालदा का क्षेत्र राजशाही डिवीजन के पश्चिम में स्थित है। यह उत्तर में पूर्णिया और दिनाजपुर जिलों से , पूर्व में दिनाजपुर और राजशाही से , दक्षिण में मुर्शिदाबाद से तथा पश्चिम में मुर्शिदाबाद , संथाल परगना और पूर्णिया से घिरा हुआ है। इसका सिविल स्टेशन और प्रशासनिक मुख्यालय इंग्लिश बाजार में स्थित है , जो महानंदा नदी के पश्चिमी तट पर बसा प्रमुख नगर है। मालदा की संपूर्ण पारिस्थितिक एवं भौगोलिक स्थिति ने रेशम उद्योग के सर्वांगीण विकास को बढ़ावा दिया।
रेशम उत्पादन एक विशाल उद्योग था , जिसमें इनडोर और आउटडोर दोनों प्रकार की प्रसंस्करण प्रक्रियाएँ सम्मिलित थीं। इस क्षेत्र में शहतूत के पौधों की खेती से लेकर रेशमी वस्त्र निर्माण तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया जारी थी। मालदा के लोग रेशम उद्योग के विभिन्न चरणों में कार्यरत थे। यह एक श्रमप्रधान उद्योग था जिसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य की भागीदारी अनिवार्य थी।कच्चे रेशम का उत्पादन मुख्यतः दो चरणों पर आधारित था) :1) शहतूत की खेती और)2) रेशम के कीड़ों का पालन। पूर्व - औपनिवेशिक तथा औपनिवेशिक शासकों की तुलना से ज्ञात होता है कि सल्तनत और मुगल शासनकाल में देशी रेशम उद्योग तथा अन्य कपड़ा उद्योगों को व्यापक संरक्षण प्राप्त था। किंतु औपनिवेशिक शासक न्यूनतम निवेश द्वारा अधिकतम लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से कार्य करते थे। उदाहरणस्वरूप , 1769 में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक परिपत्र जारी कर रेशम की बुनाई को हतोत्साहित किया और कच्चे रेशम के उत्पादन को बढ़ावा दिया।

रेशम व्यापार आंतरिक और बाहरी :

प्राचीन काल से ही मालदा रेशम उद्योग का एक अत्यंत प्रतिष्ठित केंद्र रहा है। विभिन्न प्रकार के रेशमी उत्पादों का उल्लेख मिलता है , तथा 'पुण्डवर्धन' का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में गौर के रेशमी वस्त्रों को 'पट्टवस्त्र' कहा गया है। मुस्लिम शासक रेशमी वस्त्रों के बड़े संरक्षक रहे हैं। मुगल सम्राट अकबर के दरबारी अबुल फज़ल ने अपनी कृति 'आइनअकबरी-ए-' में खारखानों का वर्णन किया है, जहाँ उत्कृष्ट रेशमी वस्त्रों का निर्माण किया जाता था।
कालांतर में अनेक व्यापारी वर्ग मालदा के रेशम व्यापार से सक्रिय रूप से जुड़े। मालदा को 'रेशम उद्योग का गढ़' कहा जाता था। लेखक एस .सी. गुहा ने अपनी पुस्तक *"1660 से 1833 तक मालदा और मुर्शिदाबाद का रेशम उद्योग"* में इस क्षेत्र के रेशम उद्योग का उल्लेख किया है। यद्यपि , उन्होंने विशेष रूप से औपनिवेशिक आर्थिक नीति को विश्लेषित नहीं किया।रेशम उत्पादन पर अन्य विद्वानों जैसे एस चौधरी .एन., एच .जी. हनुमप्पा, एम मदन मो .हन राव, एचशिवप्पा .वी., जियोवन्नी फेडरिको, मोहम्मद अशरफ खान , टीसाठे .वी., पी मोहंती आदि ने भी .के. महत्वपूर्ण अध्ययन किए हैं। हालांकि, रेशम उत्पादन से संबंधित व्यापक

वाणिज्यिक उद्योग और व्यापार के तुलनात्मक विश्लेषण पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है।

रेशम उद्योग में महिलाओं की भूमिका

रेशम उत्पादन एक श्रमप्रधान , कृषि आधारित व्यावसायिक आर्थिक गतिविधि थी। सस्ते श्रम की उपलब्धता उद्योग के विकास की एक महत्वपूर्ण पूर्वशर्त थी। रेशम उत्पादन कार्य कुटीर उद्योग के स्वरूप में संचालित होता था और कृषि संरचना का अभिन्न अंग था।मालदा कृषि आधारित क्षेत्र होने के कारण यहाँ बड़ी संख्या में मौसमी कृषि मजदूर उपलब्ध थे। रेशम उत्पादन में दो मुख्य गतिविधियाँ थीं इनडोर और : आउटडोर कार्य। महिलाओं की भूमिका इस उद्योग में अत्यंत महत्वपूर्ण थी। सामान्यतः पुरुष सदस्य खेतों में कार्य करते थे, जबकि महिलाएँ घरों में रेशम के कीड़ों की देखभाल करती थीं। रेशम उद्योग को गरीबों" भी कहा जाता था। भारतीय समाज में महिलाओं को " का उद्योग के रूप में मान्यता प्राप्त थी "सीमांत वर्ग", इसलिए इस उद्योग में उनकी भागीदारी विशेष महत्व रखती थी।

इस अध्याय में विशेष रूप से दो पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है :)1) रेशम उत्पादन में महिला श्रमिकों की भूमिका , और)2) रेशम उद्योग में महिलाओं की भागीदारी का महत्व।

निष्कर्ष :-

इतिहास यह दर्शाता है कि किसी भी राष्ट्र या क्षेत्र की आर्थिक समृद्धि के लिए उद्योगों का विकास अत्यंत आवश्यक है। बड़े उद्योगों के साथ साथ- लघु उद्योगों के महत्व को भी नकारा नहीं जा सकता। इसी परिप्रेक्ष्य में, मालदा के रेशम उद्योग और व्यापार के सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन का विशेष- महत्व है।यह अध्ययन मुख्यतः औपनिवेशिक शासनकाल में मालदा के रेशम उद्योग और वाणिज्य की विशेषताओं पर केंद्रित है। मालदा अपने उत्कृष्ट रेशम उत्पादों के लिए विख्यात था। इस उद्योग की घरेलू प्रकृति के कारण परिवार के प्रत्येक सदस्य का इसमें योगदान रहता था। मालदा की अर्थव्यवस्था मुख्यतः रेशम उद्योग और व्यापार पर आधारित थी।इस अध्ययन के माध्यम से यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार वर्ष 1770 से 1833 तक मालदा में रेशम उत्पादन और व्यापार में परिवर्तन आया। 1770 में कमर्शियल रेजीडेंसी हाउस की स्थापना और इंग्लिश बाजार फिल्चर फैक्ट्री के संचालन के साथ , ईस्ट इंडिया कंपनी ने रेशम उत्पादन पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा कंपनी को वाणिज्यिक गतिविधियों से रोक दिया गया।उपनिवेशवाद की आर्थिक नीतियों ने मालदा के रेशम उद्योग को गहरी क्षति पहुँचाई। प्लासी युद्ध के बाद मालदा के रेशम उत्पादों की मांग में गिरावट आई और ब्रिटिश उत्पादों ने बाजार पर कब्जा कर लिया। औपनिवेशिक नीतियों के चलते रेशम उत्पादकों ने अपनी आर्थिक समृद्धि, सामाजिक प्रतिष्ठा और कलात्मक दक्षता खो दी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था, जो रेशम उद्योग पर आधारित थी, तहस नहस हो गई और- देशी उत्पादक अल्पसंख्यक बनकर रह गए।अतः इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मालदा का रेशम व्यापार और उद्योग औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान किस प्रकार परिवर्तित हुआ तथा किस प्रकार इसने क्षेत्रीय आर्थिक जीवन को प्रभावित किया।

सन्दर्भ :-

- भद्र ,गौतम' ,बंगाल के रेशम उद्योग में पायकर की भूमिका ' ,(1833 - 1757)भारतीय
- ऐतिहासिक कांग्रेस कार्यवाही ,अलीगढ़1975 ,।
- गुप्ता ,रंजन कुमार' ,बीरभूम सिल्क इंडस्ट्री :ए स्टडी ऑफ इट्स ग्रोथ टू डिक्लाइन ,'द भारतीय आर्थिक और सामाजिक इतिहास समीक्षा ,सेज प्रकाशन ,वॉल्यूम। ,iivx नंबर ,2 1980।
- गोस्वामी ,अनिंदिता' ,मुर्शिदाबाद रेशम उद्योग के ऐतिहासिक विश्लेषण पर एक अध्ययन नवाब का शासनकाल - 1717) ,'(1757इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज ,नई दिल्ली
- प्रकाशक ,खंड ,8 संख्या ,1 मार्च2019 । हक साबिरुद्दीन , 'औपनिवेशिक शासन के तहत मालदा में रेशम उद्योग की वास्तविक स्थिति,'
- मनन ,वॉल्यूम ,8 .अंक ,4 अक्टूबर .2018 हक सबीरुद्दीन , "ग्रामीण विकास पर प्रवचन :रेशम उत्पादन में महिला पहल
- मालदा जिला ,"उत्तर प्रसोंगा ,विशेषांक ,फरवरी2019 । मोइत्रा ,आलोक" ,पश्चिमबांगर रेशम शिल्पो "(1) ग्रामीण , पश्चिमबांगर खादी ओ
- ग्रामीण शिल्पो पोर्शोड ,वॉल्यूम। ,23 अक्टूबर-नवंबर ,1984मोइत्रा ,आलोक" ,पश्चिमबांगर रेशम शिल्पो "(3) ग्रामीण ,पश्चिमबांगर खादी ओ ग्रामीण शिल्पो पोर्शोड , जनवरी-फरवरी1986 ।
- सुब्रह्मण्यम ,संजय ' ,पोर्टफोलियो कैपिटलिस्ट्स एंड द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ अर्ली मॉडर्न इंडिया ,'द इंडियन इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू ,सेज पब्लिकेशंस , वॉल्यूम। ,25 क्रमांक.1988 ,4
- बुकानन ,फ्रांसिस ,जिले का एक भौगोलिक ,सांख्यिकीय और ऐतिहासिक विवरण ,या जिला ,प्रांत में दिनाजपुर का , या बंगाल का सौबा ,कलकत्ता :बैपटिस्ट मिशन.1833 ,
- बुकानन ,पूर्णिया रिपोर्ट ,पटना .1928 ,कार्टर ,एम.ओ ,. जिले में सर्वेक्षण और निपटान संचालन पर अंतिम रिपोर्ट
- मालदा ,1935-1928 अलीपुर :बंगाल गवर्नमेंट प्रेस , 1938। पेम्बर्टन ,जे.जे ,.मालदा जिले ,कलकत्ता पर भौगोलिक और सांख्यिकीय रिपोर्ट: तो .जोन्स" कलकत्ता गजट "कार्यालय1854 ,।

- रेशम और कला रेशम उद्योग का सर्वेक्षण :अंतिम रिपोर्ट , नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक अनुसंधान , नई दिल्ली1961 ,।

INTERNATIONAL JOURNAL OF INTERPRETATION OBSERVATION & ANALYSIS